डा० ...
संख्या ...
तिथि ...
पुस्तकालय ...

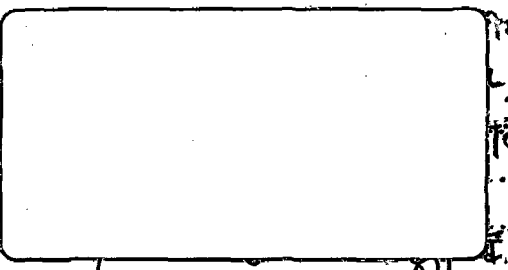

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती

की

आत्मकथा

[थ्यासोफिस्ट से अनुवादित]

★★★

सम्वत् १८८१ वि० में काठियावाड़ प्रदेश के मौरवी राज्य के अन्तर्गत एक नगर में उदीच्य ब्राह्मणों के वंश में मैंने जन्म ग्रहण किया। मैंने अपने जन्म-स्थान और पिता के नाम को कर्त्तव्य पालन-वश अप्रकाशित रखा है। यदि आत्मीय-गण जान जावें, तो वे मुझको ढूँढ़ कर घर ले जावेंगे। ऐसा होने पर मुझको अर्थ स्पर्श रूप पाप में फिर लिप्त होना पड़ेगा। और सांसारिक लोगों के समान संसार में रहकर उनकी सेवा-शुश्रुषा आदि भी करनी पड़ेगी। ऐसा होने से जिस धर्म-संस्कार रूप पवित्र व्रत में, मैंने अपना समग्र जीवन अर्पित किया है, वह असिद्ध और असमाप्त रह जायेगा। गुरु विरजानन्द दण्डी।

सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण कमांक .. 843
दयानन्द महिला महा

पाँच वर्ष से कुछ दिन कम की आयु में मैंने देवनागरी अक्षर सीखे और अपनी जाति और परम्परा की प्रथा के अनुसार बहुत-से वेद-मन्त्र और वेद-भाष्य कण्ठस्थ कर लिये। आठवें वर्ष में उपनयन हो जाने के पश्चात् मैं प्रति दिन सन्ध्या और गायत्री का अभ्यास किया करता था। उसके पश्चात् रुद्राध्याय से आरम्भ करके, यजुर्वेद संहिता के अध्ययन में प्रवृत्त हुआ। मेरा परिवार शैव मतावलम्बी था। इसलिए अल्पवयस से ही मैं शिवलिंग की पूजा का अभ्यास करने लगा था। मैं अपेक्षया सबेरे ही आहार किया करता था। और शिव-पूजा में बहुत से उपवास तथा कठोरता को सहन करना पड़ता है, इसलिये स्वास्थ्य की हानि के भय से माता मुझे प्रतिदिन शिव की उपासना करने से रोका करती थीं। परन्तु पिता उसका प्रतिवाद किया करते थे। इस कारण इस विषय को लेकर माता के साथ पिता का प्रायः विवाद रहा करता था।

मैं उस समय संस्कृत व्याकरण पढ़ता था। वैदिक-मन्त्रों को कण्ठस्थ करता था। और पिता के साथ कभी शिवालय में, कभी किसी अन्य देवालय में जाया करता था। पिता मुझे सदा यही उपदेश दिया करते थे कि शिवोपासना ही सर्वोच्च धर्म है। और, शिव में प्रगाढ़-भक्ति रखना बहुत आवश्यक कर्त्तव्य है। मैंने चौदहवें वर्ष में पाँव रखने से पहिले ही व्याकरण, शब्दरूपावली, समस्त यजुर्वेद संहिता और अन्य वेदों के भी कई एक अंश कण्ठस्थ करके एक प्रकार से अपने पाठ्य कार्य को समाप्त कर दिया था।

मेरे पिता के यहाँ व्यापार का काम होता था। और वे जमादार अर्थात् नगर के कर संग्रह करने वाले और मैजिस्ट्रेट थे। इस कारण हमें संसार में कोई क्लेश न था। किम्बहुना जमादारी का काम हमारे वंश में परम्परा से चला आता था। अस्तु।

जहाँ कहीं शिव पुराण का पाठ वा व्याख्या हुआ करती थी, पिता मुझको वहाँ साथ ले जाया करते थे। माता के बारम्बार शिव

पूजा के निषेध करने पर भी, पिता मुझको उसके करने के लिए कठोर रूप से आदेश दिया करते थे। शिवरात्रि के आने पर पिता ने कहा कि आज तुम्हारी दीक्षा होगी, और मन्दिर में जाकर सारी रात जागना पड़ेगा। माता ने यह आशंका करके कि ऐसा करने से मैं अस्वस्थ हो जाऊँगा, इसका घोररूप से प्रतिवाद किया। परन्तु पिता ने उनके आक्षेप वा प्रतिवाद पर दृष्टिपात नहीं किया। पिता की आज्ञानुसार मैं उस दिन रात्रि के समय अन्यान्य लोगों के साथ सम्मिलित होकर शिवमन्दिर में गया। शिव-रात्रि का जागरण चार प्रहरों में विभक्त होता है। दो प्रहरों के पश्चात् जब निशीथ काल आया, तब पुरोहित और अन्यान्य कई लोग मन्दिर से बाहर आकर सो गये।

मैं बहुत दिन से सुनता था कि यदि वह मनुष्य जिसने व्रत धारण किया है, शिवरात्रि को सो जायेगा, तो वह अभिलषित फल की प्राप्ति से वंचित रहेगा। इसलिए बीच-बीच में निद्रा के वेग से अभिभूत होने पर भी, मैं पुनः-पुनः आँखों में जल सिंचन करके जागरित रहा। एक ओर पिता भी मुझको जागने का आदेश देकर निद्राविष्ट हो गये। उस समय विचार पर विचार आकर मेरे हृदय पर अधिकार जमाने लगे। मेरे मन में नाना प्रकार के प्रश्न उठने लगे। फलतः मैं चिन्ता-समूह से विचलित हो गया। मैं आप ही अपने आप से जिज्ञासा करने लगा कि शास्त्र में जो कहा गया है, कि महादेव विचरण करते हैं, भोजन करते हैं, सोते हैं, खाते-पीते हैं, हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं, तो क्या वह महादेव यही वृषवाहन पुरुष हैं, जो कि मेरे सामने हैं? क्या यही वह पुराण कथित कैलाशपति परमेश्वर है? इस चित्र से अत्यन्त अस्थिर चित्त होकर मैंने पिता को जगाकर जिज्ञासा की, कि क्या यह विकट शिव मूर्ति ही वह शास्त्रोल्लिखित महादेव हैं?

पिता ने कहा—"तू यह बात क्यों पूछता है?"

मैंने कहा—"यदि यह मूत ही सर्वशक्तिमान् जीवन्त परमेश्वर है, तो यह अपने शरीर के ऊपर चूहों को दौड़ता हुआ देखता हुआ और चूहों के सम्पर्क से अपवित्र देह होता हुआ भी, उनका क्या नहीं भगा देता ?"

तब पिता ने मुझे समझाने की चेष्टा की कि कैलाशपति महादेव की इस प्रस्तरमय मूर्ति ने पवित्र; चित्त ब्राह्मणों की की हुई, प्रतिष्ठा के कारण देवत्व लाभ कर लिया है। विशेषतः इस पापमय कलियुग में महादेव का साक्षात्कार होना असम्भव है। इसलिये पाषाण आदि की मूर्ति में ही उनकी सत्ता कल्पित की जाती है।

पिता की इन बातों से मेरी तृप्ति नहीं हुई। श्रान्त और क्षुधित होने के कारण मैंने पिता से घर जाने की अनुमति माँगी। पिता ने आज्ञा देकर मेरे साथ एक सिपाही कर दिया। और, इस विषय में कि मैं भोजन करके व्रत-भंग न करूँ, बारम्बार मुझसे कह दिया। परन्तु घर में आकर जब मैंने माता से क्षुधा की कथा को प्रकाशित किया, तब उन्होंने जो कुछ आहार मुझे खाने के लिये दिया, उसको मैं बिना खाये नहीं रह सका। भोजन के पश्चात मुझे गहरी नींद आ गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल पिता ने घर में आकर सुना कि मैंने व्रत-भंग किया है, यह सुनकर वह मेरे ऊपर बड़े क्रोधित हुये। और, मुझको वह यह भी समझाने लगे कि मैंने व्रत भङ्ग करके महा-पाप किया है। परन्तु मैं उस पाषाण की मूर्ति को परमेश्वर के भाव से विश्वास न कर सका। और, मन में सोचने लगा कि मैं फिर कैसे उसकी उपासना करूँगा ? और, कैसे उसके लिये उपवास रक्खूँगा ? किन्तु उस आन्तरिक भाव को छिपा कर मैंने पिता से कहा कि जब मेरा सारा समय पाठाभ्यास करने में ही चला जाता है, तो मेरे लिए नियमित रूप से शिव की आराधना कैसे सम्भव हो सकती है ? माता और चाचा दोनों ने यह कह कर कि यह युक्ति-सङ्गत है, मेरी

बात का समर्थन किया। अन्त में उन्होंने मुझे आ५ ४ समय पाठ आदि कार्य में ही लगाने की आज्ञा दी। उसके अनुसार मैंने पाठ्य-विषय को कुछ विस्तृत करके निघण्टु, निरुक्त और पूर्वमीमांसा आदि का अध्ययन आरम्भ किया।

हम पाँच भाई-बहिन थे। उनमें दो मेरे भाई और दो बहिन थीं। जब मेरी आयु सोलह वर्ष की थी, तब मेरे सबसे छोटे भाई का जन्म हुआ। एक बार रात्रि के समय मैं एक बान्धव के घर नृत्योत्सव देख रहा था, कि घर से एक भृत्य ने आकर समाचार दिया कि मेरी चौदह वर्ष की बहिन बहुत ही पीड़ित हो गई है। आश्चर्य है कि यथोचित चिकित्सा के होते हुये भी, मेरे घर लौटने के दो घण्टे पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गई।

उस भगिनी के वियोग का शोक मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोक से मेरा हृदय विलक्षण रूप से व्यथित हुआ। जिस समय मेरे आत्मीय और स्वजनगण उस भगिनी के लिये चारों ओर रोदन और विलाप करते थे, उस समय मैं पाषाण निर्मित मूर्ति के समान अविचलित भाव से खड़ा हुआ, यह सोच रहा था कि इस संसार में सब मनुष्यों को ही मृत्यु के मुख में जाना होगा। इसी प्रकार मुझे भी एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना होगा।

फलतः मैंनें उस समय यह सोचा—किस जगह जाने से म मृत्यु की यन्त्रणा से बच सकूँगा ? और मुक्ति के पथ का दर्शन कर सकूँगा। मैंनें उसी जगह खड़े-खड़े यह संकल्प कर लिया कि जिस प्रकार से हो सकेगा; उसी प्रकार से मैं मुक्ति-पथ के दर्शन से अवर्णनीय मृत्यु क्लेश से अपनी रक्षा करूँगा। ऐसी चिन्ता के पश्चात् उपवासादि में मेरी श्रद्धा नहीं रही। और, मैं आध्यात्मिक शक्ति के विषय में चिन्तन करने लगा। परन्तु मैंने इस सारी आन्तरिक-कथा को किसी को जानने नहीं दिया।

कुछ दिन पीछे मेरे चाचा की भी मृत्यु हो गई। मेरे चचा सद्गुण-सम्पन्न सुशिक्षित व्यक्ति थे। और वह मुझको बहुत प्यार करते थे। इस कारण मैं उनके वियोग से बहुत ही व्यथित हुआ। और, इस घटना से मेरे हृदय में यह भाव और भी बद्धमूल हो गया कि संसार के भीतर कोई ऐसी स्थायी तथा मूल्यवान् वस्तु नहीं है, जिसके निमित्त जीवन धारण किया जा सकता है। ऐसी मानसिक अवस्था के विषय में माता-पिता को तनिक-सा भी ज्ञान न होने देने पर भी, मैंने यह बात किसी-किसी बन्धु से प्रगट कर दी कि मेरे लिए विवाहित होना वांछनीय नहीं है। होते-होते यह बात माता-पिता के कर्णगोचर हुई। और, वे विवाह कार्य में शीघ्र ही संलग्न करने के लिये कृतसंकल्प हो गये।

जब मैंने यह जाना कि माता-पिता मेरे विवाह के लिये बहुत ही व्यस्त हैं, तब मैं उनको रोकने के लिये यथा-साध्य चेष्टा करने लगा। और, बन्धु लोगों से भी मैंने अनुरोध किया कि माता-पिता को समझा-बुझाकर रोक दें। अन्त में पिता के समीप मैंने अपने पक्ष का ऐसा समर्थन किया कि उन्होंने थोड़े दिन के लिये मेरे विवाह-व्यापार को स्थगित रखना ही युक्तिसंगत निश्चित किया। उन्हीं दिनों मेरी यह भी इच्छा हुई थी कि सुयोग मिले तो काशी जाकर व्याकरण समाप्त करके, उत्तम रूप से ज्योतिष-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त कर लूँ; परन्तु यह इच्छा कार्य रूप में परिणत न हुई। काशी-यात्रा के विषय में बहुत दुःखित होकर माता ने कहा कि तुम जो कुछ भी अध्ययन करने की इच्छा रखते हो, वह घर पर ही अध्ययन कर सकते हो। और, नवयुवक बहुत लिखना पढ़ना सीख जाने पर, बहुधा स्वेच्छा-परायण हो जाते हैं, इसलिये आगामी वर्ष से पहिले ही मैं तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध करूंगी।

अन्त में काशी जाने की बात को छोड़कर मैंने पिता से कहा हमारी जमादारी के भीतर एक ग्राम में एक हमारे परिचित

अध्यापक हैं, यदि आप मुझको उनके पास अध्ययनार्थ जाने की आज्ञा प्रदान करें, तो मैं यहाँ रह कर ही पढ़ सकता हूं। वह प्रवीण अध्यापक हमारे ग्राम से तीन कोस पर रहता था। पिता के आज्ञा देने पर मैं उसके पास जाकर कुछ समय तक निश्चित चित्त होकर अध्ययन करने लगा। परन्तु वहां एक दिन घटनावश मैंने विवाह के विषय में अपना विरुद्ध अभिप्राय प्रकाशित कर दिया। पिता ने किसी प्रकार उसको जान लिया। और, मुझको घर लौट आने की आज्ञा भेज दी। उसके अनुसार मैं घर आ गया।

मैंने देखा कि मेरे विवाह के लिये समस्त वस्तुएं घर में प्रस्तुत हो गई हैं। तब मैं स्पष्ट रूप से समझा कि माता-पिता मुझे और अधिक समय तक पढ़ने न देंगे और मेरा विवाह किये बिना शान्त न होवेंगे। उसके पश्चात् मैंने स्थिर किया कि जिस काम के करने से मुझे विवाह-शृङ्खला में निबद्ध न होना पड़े, उसी कार्य का अनुष्ठान करना मेरा कर्तव्य है।

इसी प्रकार निश्चय करके संवत् १९०३ वि० में एक दिन संध्या के समय बिना किसी के जाने हुए, मैंने संसार का परित्याग कर दिया। चार कोस दूर, एक गांव में रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल होने से पूर्व ही मैं चल पड़ा। सारा दिन चलकर मैंने पन्द्रह कोस से भी अधिक मार्ग पार कर लिया। जिस मार्ग से होकर सर्व साधारण लोग जाते थे, मैंने इच्छा की कि उस मार्ग से न चलूँ। इस सावधानता के साथ पर्यटन करना मेरे लिये कितना मङ्गल-कर हुआ, इसके कहने की आवश्यकता नहीं है। कारण यह कि तीसरे दिन एक सरकारी कर्मचारी के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ कि किसी भागे हुए नवयुवक की खोज के लिये कई अश्वारोही इधर-उधर घूम रहे हैं।

कुछ काल पश्चात् कुछ भिक्षुक ब्राह्मणों के साथ मेरा साक्षा-

त्कार हुआ। वे, यह कह कर कि जितना दान यहाँ दोगे, उतना ही परलोक में सुख भोग करोगे, मेरे अलंकार आदि मांगने लगे। सुतराम मेरे पास जो रुपये और सोने चाँदी के अलंकार थे, वे सब मैंने उनको दे दिये। इस प्रकार सर्वस्वदान करके मैं शैला नगर में लालाभक्त के पास चला गया। लालाभक्त एक साधु और सुशिक्षित व्यक्ति करके प्रसिद्ध थे। वहाँ एक ब्रह्मचारी के साथ मेरी बातचीत हुई। मैं उससे दीक्षा लेकर ब्रह्मचारी के आश्रम में प्रविष्ट हो गया। और गेरुए वस्त्र धारण करके, मैंने शुद्धचैतन्य नाम ग्रहण कर लिया।

शैला नगर से मैं अहमदाबाद के पास किसी ग्राम को जाता था कि दुर्भाग्यवश एक परिचित वैरागी के साथ मेरा साक्षात् हो गया। वैरागी हमारे निवास स्थान के पास ही किसी ग्राम विशेष का रहने वाला था। वह मुझको देखकर जितना विस्मित हुआ, उतना ही उसको देखकर मैं भयभीत हुआ। उसके पश्चात् उसके पूछने पर मैंने कहा कि पृथिवी के नाना स्थानों में परिभ्रमण करने और दर्शन करने के अभिप्राय से ही मैं घर से निकल आया हूं। तब उसने मेरे इस अभिप्राय की निन्दा की। और, मुझे गेरुवे कपड़े पहिने देखकर उपहास करने लगा। मुझ को हतबुद्धि के समान देखकर वैरागी मेरे भावी संकल्प के विषय में जान जायेगा, अतः मैंने उससे कह दिया कि कार्तिक मास में, सिद्धपुर में जो मेला होगा, मैं उसे देखने जाता हूं।

वैरागी के चले जाने पर मैं शीघ्र ही सिद्धपुर पहुंच गया, और, साधु संन्यासियों के साथ नीलकंठ महादेव के मन्दिर में रहने लगा। उस विस्तृत मेला भूमि में, मैंने नाना श्रेणी के साधु, ज्ञानी और परमार्थ-परायण तपस्वियों के संसर्ग में कितने ही दिन बिना किसी विपत्ति के व्यतीत किये। परन्तु एक दिन

प्रातःकाल मैं साधुजनों के साथ नीलकण्ठ के मन्दिर में बैठा था कि अकस्मात् मेरे पिता कई सिपाहियों के साथ मेरे सामने आकर खड़े हुए। तब मेरे सहज में ही यह समझ में आ गया कि पूर्वोक्त वैरागी ने घर लौटकर पिता से मेरे पलायन का समाचार कह दिया है।

पिता ने क्रोध से अग्निमूर्त्ति धारण करके मुझको बहुत ही तिरस्कृत किया। और बारम्बार यह कहने लगे कि ऐसा करके मैंने अपने कुल को सदा के लिये कलंकित किया है। उनकी बात का किसी प्रकार प्रतीकार करना उचित न समझ कर, मैं हाथ जोड़ कर उनके पैरों में गिर गया और, यथोचित विनय तथा नम्रता प्रकाश करके उनको सन्तुष्ट करने की चेष्टा करने लगा। उनसे मैंने यह भी कहा कि मैंने एक असद्व्यक्ति के असत्परामर्श से ऐसा किया है। और, उसके पश्चात् मुझे अपने किये पर बहुत पश्चाताप हुआ है। पिता से मैंने यह भी कहा कि आप का आना मेरे लिये सुविधा का कारण हुआ है, क्योंकि मैं घर लौटने का उद्योग कर ही रहा था कि आप आ गये। अब चलिये, मैं आपके साथ घर लौट चलगा। इस प्रकार के अनुनय-विनय से [illegible] चेष्टा करने पर भी पिता जी शान्त न हुए। उन्होंने क्रोध के वश में होकर मेरे गेरुये कपड़े फाड़ डाले, कमण्डलु फेंक दिया और मुझ को मातृहन्ता कहकर भर्त्सना करने लगे। अन्त में मेरी रक्षा के लिये उन्होंने कई सिपाहियों को नियत कर दिया। सिपाही बन्दी के समान दिन रात मेरी रक्षा करने लगे।

इस ओर पिता के संकल्प के समान मेरा संकल्प भी अविचलित था। इसलिये सिपाहियों के हाथ से छुटकारा प्राप्त करने के लिये मैं निरंतर ही सुयोग की प्रतीक्षा करने लगा! एक दिन रात्रि का जब तीसरा प्रहर था, तब मुझको निद्राविष्ट

समझकर मेरे रक्षक सिपाही भी निद्रित हो गये। तब मैं उत्तम सुयोग देखकर धीरे-धीरे उठा और एक जल परिपूर्ण पात्र हाथ में लेकर शीघ्रता से चल दिया। आधे कोस से अधिक दूर पहुंचकर, मैंने एक बहुशाखा समन्वित वृक्ष देखा, और अपने को छिपाने के उद्देश्य से मैं उस वृक्ष पर चढ़कर एक सघनपल्लवावृत स्थान में छिप गया। उषाकाल होने पर मैंने देखा कि सिपाही लोग चारों ओर मेरा अनुसन्धान कर रहे हैं।

मैं सन्ध्याकाल पर्यन्त उसी वृक्ष पर चुपचाप बिना हिले डुले बैठा रहा। उसके पश्चात् जब चारों ओर अन्धकार फैल गया; तब मैं वृक्ष से उतर कर विपरीत दिशा में चलने लगा। चलते-चलते अहमदाबाद और बड़ौदा पहुंचा। बड़ौदा के चैतन्यमठ नामक मन्दिर में ब्रह्मानन्द और अन्यान्य संन्यासियों के साथ वेदान्त विषय में विचार हुआ। उन्होंने अब मुझे यह बात उत्तर रूप में समझा दी कि मैं ब्रह्म हूं। पहिले भी वेदान्त के अध्ययन के समय यह विषय कुछ-कुछ समझ लिया था, परन्तु अब उनसे पूर्णरूप से समझ कर जीव ब्रह्म की एकता में विश्वास करने लगा। इस समय एक काशी की रहने वाली स्त्री से मैंने यह संवाद पाया कि वहाँ पण्डितों की एक महा सभा होगी। इस संवाद के पाते ही मैंने काशी की ओर यात्रा आरम्भ कर दी। और वहां पहुंचकर सच्चिदानन्द परमहंस से मनस्तत्व के विषय में बातचीत करने लगा। सच्चिदानन्द से मैंने सुना कि नर्मदा के तीर पर चाणोद कल्याणी नाम के स्थान में बहुत से उन्नत चरित्र संन्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं। इसके अनुसार मैंने वहाँ जाकर बहुत से योगदीक्षित साधुओं को देखा। इसके पूर्व मैंने किसी योगदीक्षित साधु को नहीं देखा था।

चाणोद में कुछ दिन रहने के पश्चात् मैं, परमानन्द परमहंस से वेदान्त-सार और वेदान्त-परिभाषा प्रभृति ग्रन्थ पढ़ने लगा।

इस समय मुझको आप ही भोजन पकाना होता था। इसलिये मैंने संन्यासआश्रम में प्रविष्ट होने का संकल्प किया। विशेषतः संन्यासआश्रम का अवलम्बन करने से दूसरा नाम ग्रहण करने पर मेरा परिचय सम्पर्क भी निरापद हो जायेगा। इन सब बातों को सोचकर मैंने यह स्थिर किया कि संन्यासी सम्प्रदाय में प्रवेश करना ही मेरे लिये युक्ति-संगत है। उसी समय चाणोद के पास ही एक जंगल में से दाक्षिणात्य से दो साधु आये। उनमें एक स्वामी थे और एक ब्रह्मचारी। वे शृङ्गगिरि मठ से द्वारिका की यात्रा को जाते थे। उन साधुओं में पहिले पूर्णानन्द सरस्वती करके परिचित थे। एक परिचित महाराष्ट्रीय पण्डित के साथ मैं उनके पास गया। महाराष्ट्रीय पण्डित ने उनसे मेरे संन्यास लेने के संकल्प को कहकर मुझे, दीक्षित करने का अनुरोध किया।

पूर्णानन्द ने मेरे साथ के पण्डित की बात में यह आपत्ति उठाई कि दीक्षार्थी की आयु थोड़ी है, विशेषतः मैं महाराष्ट्रीय हूं। उसके लिये किसी गुजराती संन्यासी से दीक्षा लेना विधेय है। उसके उत्तर में मेरे साथी पण्डित बोले कि महाराष्ट्रीय संन्यासी-गण गौड़ों की भी दीक्षा कर सकते हैं। अस्तु, इस प्रकार आपत्ति वा असम्मति के पश्चात् अन्त में पूर्णानन्द सरस्वती से ही संन्यास आश्रम ग्रहण करके मैं दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुआ। दीक्षा कार्य की समाप्ति के पश्चात् दोनों साधु द्वारिका को चले गये। मैं चाणोद में कुछ दिन रहकर व्यासाश्रम को चला गया।

व्यासाश्रम में योगानन्द नामक एक योग-विद्या-विशारद साधु रहते थे। उनके पास कुछ दिन शिक्षार्थी के रूप में रहने के पश्चात् मैं कृष्ण शास्त्री के पास व्याकरण विषय में विशिष्ट रूप से ज्ञान लाभ करके फिर चाणोद चला आया। चाणोद में ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरि नामक दो साधु थे। मैं उन्हीं पुरी और गिरि के

साथ योग विषयक विचार और योगाभ्यास करने लगा। कुछ दिन के पश्चात् वे दोनों साधु चले गये। उनके चले जाने के एक मास पीछे मैं भी उनके निर्देश के अनुसार अहमदाबाद के पास दुग्धेश्वर के मन्दिर में चला गया। वहां फिर उनसे साक्षात् हुआ। मैंने वहाँ उनसे योग विद्या के गूढ़ तत्वों को सीखा। योग शिक्षा के विषय में मैं उन दोनों साधुओं का विशेष रूप से ऋणी हूं।

उसके पश्चात् मैं राजपूताना के अन्तर्गत आबू पर्वत पर गया, क्योंकि मैंने सुना था कि वहाँ सिद्ध महापुरुष गण रहते हैं। आबू से सम्वत् १९११ वि० में मैं हरिद्वार के कुम्भ पर गया। कुम्भ पर सैकड़ों साधु तपस्वियों के समागम को देखकर मैं विस्मयान्वित हो गया। जितने कुम्भ का मेला रहा, उतने ही दिन मैं एक समीपवर्त्ती जंगलावृत्त एकान्त स्थान में रहकर योगाभ्यास करता रहा। मेले की समाप्ति पर ऋषिकेश जाकर साधुओं के साथ, कभी योग की बातचीत में, कभी योगाभ्यास में, कुछ दिन बिताये। वहाँ एक ब्रह्मचारी और दो पार्वतीय उदासियों के साथ परिचय हो गया और हम चारों टिहरी चले गये।

टिहरी में कई साधुओं और राज-पण्डितों के साथ वार्तालाप हुआ। उनमें से एक ने भोजन के लिये निमन्त्रित किया। निर्दिष्ट समय पर मैं और ब्रह्मचारी बुलाने वाले के साथ निमन्त्रण-कर्ता के घर पर पहुंचे। परन्तु घर में प्रविष्ट होते ही मैंने देखा कि एक ब्राह्मण मांस काट रहा है। घर के भीतर कुछ दूर जाकर मैंने देखा कि एक स्थान में कई पण्डित स्तूपीकृत पशु-मांस और पशु मुण्ड को लिये हुए बैठे हैं। यह सब देखकर मेरे भीतर अत्यन्त घृणा का उद्दीपन हुआ। इसलिये यद्यपि गृहस्वामी ने मुझको आदर से आहूत किया; परन्तु मैं उसके घर से एक दो बात कह कर ही शीघ्र लौट आया।

कुछ काल पश्चात वही मांसाहारी पण्डित मेरे पास आया

और यह कहकर कि मेरे ही भोजन के लिये मांसादि बनाया गया है, मुझको साथ ले जाने का अनुरोध करने लगा। तब मैंने कहा कि मांस भोजन तो दूर रहा, मांस के दर्शन ही से, मेरे मन में अत्यन्त घृणा उत्पन्न होती है। अतएव यदि आप आहार के लिये मुझ से बहुत अनुरोध करते हैं, तो मुझको कुछ फल-मूल भेज सकते हैं। किम्बहुना, निमन्त्रणकर्त्ता ने ऐसा ही कर दिया।

यहाँ ग्रन्थों के अनुसन्धान करने पर पूर्वोक्त राज-पण्डित बोले कि यहाँ व्याकरण, ज्योतिष, और तन्त्र प्रभृति ग्रंथ मिल सकते हैं। मैंने इससे पूर्व कभी तन्त्र ग्रंथ न देखे थे। इसी कारण तन्त्र ग्रन्थों को मंगाकर, मैं पाठ करने लगा। परन्तु तन्त्रों में परदारागमन, यहाँ तक कि मातृगमन, दुहितृगमन और नग्न-स्त्री की पूजा प्रभृति नितान्त जुगुप्सित आचारों का अनुमोदन और मद्यमांसादि के विहित होने का प्रतिपादन देखकर, मुझे, अत्यन्त घृणा हो गई। इसके भिन्न उन ग्रन्थों में मैंने अनुवाद और व्याकरण के विषय में भी बहुत भ्रान्ति देखी। विशेषतः ऐसे-ऐसे निन्दनीय कार्यों को धर्म में परिगणित देखकर, मैं अतिशय आश्चर्यान्वित हुआ।

इसके पश्चात् टिहरी से मैं श्रीनगर में केदार घाट के एक मन्दिर में कुछ दिन ठहरा। वहां के पण्डितों के साथ विवाद उपस्थित होने पर, मैंने तन्त्रों की कथा खोलकर उनको पराभूत किया। वहाँ गंगागिरि नामक एक साधु के साथ मेरा वार्तालाप और मित्रता हो गई। उसके साथ मेरा मिलाप दोनों के लिये ही हितकर हुआ। वस्तुतः मैं इतना आकृष्ट हुआ कि उनके साथ मैंने दो मास से भी अधिक व्यतीत किये। केदार घाट से रुद्रप्रयाग प्रभृति स्थानों में पर्यटन करके मैं अगस्त्यमुनि के आश्रम में आया। उसके पश्चात् शिवपुरी नामक पर्वत की चोटी पर जाड़ों के चार मास बिताये। शिवपुरी से केदार घाट होता हुआ, गुप्त काशी में

आया। वहाँ कुछ दिन ठहर कर त्रिजुगीनारायण, गौरी-कुण्ड और भीम-गोड़ा प्रभृति के दर्शन करके, मैं फिर केदारघाट चला आया।

केदार घाट एक अति रमणीय स्थान है। पूर्वोल्लिखित ब्रह्मचारी और दोनों उदासियों के न लौट आने तक, मैं वहां के जंगम सम्प्रदाय के साधुओं के साथ रहने लगा। अस्तु। सिद्ध महापुरुषों के अनुसन्धान के अर्थ मैंने चारों ओर की हिमाच्छादित पर्वत मालाओं में भ्रमण करने का संकल्प किया। परन्तु विस्तृत हिम और संकटमय पार्वतीयपथ के विषय में चिन्ता करके, महापुरुषों के अनुसन्धान के सम्बन्ध में, मैं पहिले उन प्रदेशों के रहने वाले लोगों से जिज्ञासा करने लगा। किन्तु मेरी बात को सुनकर, वे सब ही मुझे अज्ञ और भ्रान्त-विश्वासी समझने लगे। फलतः इस प्रकार बीस दिन तक व्यर्थ पर्यटन करके, मैं निरुत्साहित हो गया।

लौटते हुये तुङ्गनाथ की चोटी पर चढ़ गया। वहां एक मन्दिर के भीतर बहुत-सी देवमूर्ति और पुरोहितों को देखकर, मैं उसी दिन चोटी से नीचे उतर आया। उतरते समय मुझे अपने सामने दो मार्ग दीख पड़े। उनमें से एक पश्चिम की ओर और दूसरा दक्षिण पश्चिम की ओर जाता था। मैंने किसी प्रकार की विवेचना न करके, जंगल की ओर जाने वाले मार्ग का अवलम्बन किया। उस मार्ग पर चलते चलते मैं एक निविड़ जंगल के भीतर पहुंच गया। जंगल में स्थान-स्थान पर जल विहीन छोटी-छोटी नदियां और छोटे बड़े पत्थर विद्यमान थे। ऐसे निविड़ बन के बीच में पहुंच, मैं यह सोचने लगा कि उच्चतर पर्वत के ऊपर चढ़ूँ या नीचे की ओर चलूँ।

अन्त में यह सोचकर कि पर्वत के ऊपर चढ़ना विशेष विघ्न संकुल है। तृणलता और गुल्मों को दृढ़ रूप में पकड़कर, मैं एक जल विहीन नदी के अपेक्षाकृत ऊँचे तट पर पहुंच गया। उसके पश्चात् एक ऊँचे शिलाखण्ड के ऊपर खड़ा हो गया, तो मैंने चारों

आर केवल ऊँचे-ऊँचे प्रस्तर खण्ड और अविश्रान्त अरण्य देखे।- अस्तु। यद्यपि काँटों के आघात से मेरा सारा शरीर क्षत हो गया था और मेरे दोनों पैर चलने की शक्ति विहीन हो गये थे, तो भी मैं उस बन भूमि से निकलने के लिये आगे बढ़ा।

कुछ देर के पश्चात् एक पर्वत के नीचे पहुंच कर मार्ग का सन्धान प्राप्त हुआ। निकट ही कई श्रेणी बद्ध पर्ण-कुटियें थीं। मैंने उन पर्ण कुटियों में रहने वालों से जिज्ञासा की। उन्होंने कहाकि यह मार्ग ओखीमठ तक चला गया है। यद्यपि उस समय चारों ओर अन्धकार फैल गया था, तो भी मैं उस मार्ग का परित्याग न करने का यत्न करता हुआ धीरे-धीरे चलने लगा। अन्त में ओखी-मठ में पहुंचकर रात्रियापन किया

प्रातःकाल मैं फिर गुप्तकाशी में आया। और वहाँ से ओखी-मठ में आकर वहां के महन्त के साथ बातचीत की। महन्त मुझको शिष्यत्व ग्रहण करने के निमित्त अनुरोध करने लगा। और, इस प्रकार के प्रलोभन युक्त प्रस्ताव करने लगा कि उसकी मृत्यु के पश्चात् महन्त पद पर अधिष्ठित होकर, मैं लाखों रुपये का स्वामी हो जाऊँगा। उसके उत्तर में मैंने सरल भाव से कहा कि सम्पत्ति या सांसारिकता में मेरा अनुराग नहीं है यदि ऐसा होता, तो मैं कभी घर छोड़ कर न आता। क्योंकि मेरे पिता की सम्पत्ति आपके मठ की सम्पत्ति की अपेक्षा से किसी अंश में भी न्यून न थी। मैंने सम्पत्ति-उपभोग के लिये संसार त्याग नहीं किया, अपितु जिस गूढ़ ज्ञान के प्राप्त होने से मुक्ति रूपी परम-पद के लाभ में मैं समर्थ हो सकूँ, उसी के उपार्जन करने के लिये मैंने संसार त्याग कियो है।

तब महन्त ने मेरे साधु-सङ्कल्प की प्रशंसा करके वहां कुछ दिन ठहरने के निमित्त अनुरोध किया। किन्तु मैंने उसके उत्तर में कुछ

नहीं कहा । दूसरे दिन प्रातःकाल मैं वहाँ से जोशी-मठ को चला गया

जोशी-मठ में शास्त्री, संन्यासी, और योगियों के साथ योग और अन्यान्य विषयों की आलोचना करके, मैं बद्रीनारायण के मन्दिर को चला गया। वहां के मन्दिर के प्रधान पुरोहित रावल जी थे। मैं रावल जो के साथ कई दिन तक रहा और वेद तथा दर्शनशास्त्रों के विषय में आलोचना की । बद्रीनारायण के समीपवर्त्ती प्रदेश में किसी योगी वा सिद्ध पुरुष के दर्शन होना असम्भव सुनकर, मैंने अन्यान्य स्थानों में पर्यटन करने का सङ्कल्प किया।

एक दिन प्रातः चल कर मैं अलखनन्दा के तट पर पहुंचा। अलखनन्दा के दूसरी पार न जाकर उसके उत्पत्ति-स्थल को देखने के अभिप्राय से मैं बड़े क्लेश से हिमकीर्ण मार्ग को अतिक्रमण करने लगा। जब मैं उस स्थान के समीप पहुंचा जो कि अलखनन्दा के उत्पत्ति स्थान के नाम से प्रसिद्ध है, तो मुझे और किसी दिशा में मार्ग दिखाई नहीं दिया। इसलिये नदी के दूसरी पार जाना ही युक्तियुक्त समझा। मेरे शरीर पर बहुत ही अल्पवस्त्र था। इस कारण शीत की अधिकता से मेरा सारा शरीर कम्पायमान होने लगा। इसके अतिरिक्त क्षुधा तृष्णा से भी शरीर अवसन्न हो गया। एक बर्फ के टुकड़े को खाकर मैंने क्षुधा और तृष्णा के निवारण की चेष्टा की; परन्तु उससे न तो क्षुधा ही निवृत्त हुई और न पिपासा ही। उसके अनन्तर मैं अलखनन्दा में उतरा। वह किसी-किसी स्थान में बहुत गहरी थी और उसकी तीर-भूमि सूक्ष्म धार वाले हिम खण्डों के समूह से समावृत्त थी। इस सूक्ष्मधार वाले बर्फ के आघात से मेरे तलवे ऐसे आहत हुए कि उनमें से रक्तस्राव होने लगा। असह्यशीत से मेरे दोनों पांव ठिठुर गये। और, मेरा शरीर एक प्रकार से चेतना रहित हो गया।

ऐसे असीम क्लेश के बाद जब मैं अलखनन्दा के दूसरी पार पहुंचा, तब शरीर के सारे वस्त्रों को एकत्र करके उन क्षत स्थानों को बाँधा, किन्तु एक पग भी आगे बढ़ने की शक्ति न रही। ऐसी अवस्था में मैं दूसरों के सहाय का प्रार्थी होकर खड़ा था कि इतने में ही घटनावश पार्वतीय प्रदेश के रहने वाले, दो जन मेरे पास उपस्थित हुये। उन्होंने मुझे अपने साथ ले चलने को बारम्बार अनुरोध किया; परन्तु मैंने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। कारण यह कि उस समय मुझमें चलने की शक्ति कुछ भी नहीं थी। मेरे लिये तो उस समय एकमात्र मृत्यु ही वांछित-विषय हो रहा था। परन्तु मेरे अन्दर ज्ञान की स्पृहा ऐसी प्रबल थी कि मैंने मृत्यु कामना का परिहार किया। और, कुछ देर विश्राम करके धीरे २ चलकर वसुधारा नामक पवित्र स्थान में पहुंचा।

वसुधारा से बद्रीनारायण के मन्दिर में प्रायः आठ घड़ी रात गये जा पहुंचा। मन्दिर के स्वामी रावल जी ने मुझे देखकर कुछ आश्चर्य प्रकाश पूर्वक सारे दिन का संवाद पूछा। मैंने उनसे क्रमबद्ध वृत्तान्त वर्णन करके आहार किया और मैं मन्दिर में ही सो गया। दूसरे दिन रावल जी से विदा होकर रामपुर की ओर चल पड़ा। रामपुर में रामगिरि नामक साधु के घर में पहुंचा। रामगिरि कभी सोते नहीं थे, सारी रात जागृत रहकर कथा-वार्ता कहते रहते थे। कभी चिल्लाने लगते थे और कभी रोने लगते थे। अकेले रहते हुए और इस प्रकार व्यवहार करते हुए भी शांत नहीं होते थे। मैंने उनके शिष्यों से सुना कि यह उनका स्वभाव ही है। वहाँ से काशीपुर और, फिर वहाँ से द्रोणसागर जाकर शीत ऋतु व्यतीत की। द्रोणसागर से मुरादाबाद होता हुआ, सम्भल गया। गढ़मुक्तेश्वर को जाते हुए मुझे भागीरथी के दर्शन हुए।

उस समय मेरे पास हठ-प्रदीपिका, योग-बीज और शिव-सन्ध्या प्रभृति ग्रन्थ थे। मैं भ्रमण-काल में इन सब ग्रन्थों का पाठ किया

करता था। उनमें से मैंने नाड़ी-चक्र का विवरण ढूंढा। वह मुझे सत्य प्रतीत नहीं हुआ। प्रत्युत उस विषय में, मेरे चित्त में संशय उत्पन्न हो गया। संशयजाल को तोड़ने के अभिप्राय से, मैं एक दिन नदी के भीतर से, एक शव खींच लाया। एक छुरी द्वारा उस शव को उत्तम रीति से चीरकर, उस ग्रन्थ को सम्मुख रख लिया और ग्रन्थोल्लिखित वर्णन के साथ चीरे हुए शव के अनेक अङ्गों को मिलाकर देखने लगा। परन्तु, उसके किसी अंग में भी ग्रन्थ वर्णित नाड़ी-चक्र का निदर्शन-मात्र भी न पाकर, उस शव के साथ ही, मैंने उस ग्रन्थ को भी टुकड़े-टुकड़े करके नदी में फेंक दिया।

उस समय से वेद, उपनिषद्, पातंजल और सांख्य के भिन्न और जिन-जिन ग्रन्थों में योग की कथा का उल्लेख है, उन सबको ही मैं मिथ्या समझने लगा। इस घटना के पश्चात् कुछ काल तक गङ्गा के तट पर रहकर, मैं फर्रुखाबाद आया। और, वहाँ से संवत् १९१२ वि० में मैं कानपुर आया। उसके पश्चात् इलाहाबाद और मिर्जापुर प्रभृति स्थानों में भ्रमण करके काशी में पहुंचा। वहाँ गङ्गा और वरुणा के संगम के स्थान पर एक कुटि के भीतर रहा। और, वहाँ के राजाराम शास्त्री और काकाराम शास्त्री प्रभृति पंडितों से परिचित हो गया। काशी से चाण्डालगढ़ आया। मैं उस समय योगानुशीलन में अधिक समय व्यतीत करता था। और, अन्नाहार मैंने त्याग दिया था। केवल दूध पान करके ही देह धारण करता था। परन्तु दुख का विषय है कि मुझे उस समय बिजया पीने की बान पड़ गई थी।

चाण्डालगढ़ के निकटस्थ, एक गाँव के एक शिवालय में, एक दिन रात्रि यापन के लिए उपस्थित हुआ। भाँग से उत्पन्न हुई मादकता के वश से मुझे वहाँ गहरी नींद आ गई। मेरे विवाह के सम्बन्ध में पार्वती के साथ महादेव की बातचीत हो रही है—ऐसा एक स्वप्न देखकर, मैं जाग पड़ा। उस समय वर्षा हो रही थी।

त्तराम मन्दिर के बरामदे में गया। वहाँ नन्दी-वृष-देवता की एक
शाल—मूर्ति थी। अपनी पुस्तकादि को नन्दी की मूर्ति के ऊपर
खकर मैं उसके पीछे बैठ गया। सहसा ही नन्दी मूर्ति के भीतर
ष्टिपात करने से मुझे विदित हुआ कि उसमें एक मनुष्य बैठा
आ है। मेरे उसकी ओर हाथ फैलाने पर ही वह कूद कर भाग
या। तब मैं उस ही शून्यगर्भ मूर्ति के भीतर बैठकर, अवशिष्ट
ात्रि भर सोता रहा।

प्रातःकाल एक वृद्धा वृष देवता की पूजा के लिए आई। मैं उस
समय वृष देवता के भीतर ही बैठा हुआ था। कुछ देर पीछे वह
द्धा दही और गुड़ लेकर आई। और मुझे ही वृष देवता समझकर
दही और गु ड़ मेरे सामने रख दिये। मैं भी उस समय क्षुधार्त्त
था, मैं उस सब को हो खा गया। विशेषतः अम्लरस विशिष्ट दही
के पीने से भाँग की मादकता भी जाती रही। उसके पश्चात् जहाँ
से नर्मदा निकली है, उस स्थान के देखने के अभिप्राय से यात्रा
की। मार्ग में अनेक बन-जंगल पड़ते थे। एक स्थान में एक जङ्गली
सूअर ने आकर आक्रमण करने की चेष्टा की। उसके गुड़गुड़ाने
र समीपवर्तीय लोग मेरी रक्षा के निमित्त आ पहुंचे। किन्तु उनके
पहुंचने के पहिले ही मैंने वराह से अपनी रक्षा कर ली थी।

इसके पीछे उन्होंने यह कह कर कि अरण्य में व्याघ्रादि हिंसक
जन्तुओं का कवल हो जाऊँगा, मुझसे लौट जाने का अनुरोध
किया। परन्तु उनकी बात को न सुनकर, मैं क्रमशः आगे ही चल
दिया। स्थान-स्थान में मैंने हस्तियों के उखाड़े वृक्ष देखे। एक स्थान
में कण्टक वृक्ष से देह अनेक जगहों से विछिन्न हो गई। क्रमशः
चारों दिशायें संध्या के अन्धकार में आवृत्त होने लगीं। उस समय
मैंने थोड़ी दूर पर ही अग्नि का प्रकाश देखकर मनुष्यों के निवास
का निदर्शन पाया। और, प्रकाश की ओर चलते-चलते कई-एक
पर्ण कुटियों के समीप पहुंचा।

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक 843
दयानन्द महिला

...ी। मैंने उसके जल में दत स्थान धोया। और, एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गया। वहाँ के त मेरे निकट आये और मेरे आहार के लिए दुग्ध लाये। सारी वे मेरी रक्षा करते रहे और इस प्रकार उन्होंने परम-आतिथ्य परिचय दिया। मैं उनके आतिथ्य से परितुष्ट होकर गहरी नींद सो गया। प्रातःकाल उठकर मैंने सन्ध्यावन्दन किया और उ पश्चात् भविष्यत् के लिये प्रस्तुत होने लगा। ★

प्रचार के लिए !
सहयोग दीजिए !

★ वैदिक साहित्य को अधिक से अधिक हाथों तक पहुंचाने के लिये हमने निश्चय किया है कि हम सस्ते ट्रैक्ट सुन्दर आकार-प्रकार में छपवा कर नाममात्र के मूल्य में वितरित कराएं। अतः समस्त आर्यसमाजों व दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि यदि वे कृपा कर अपना अपनी ओर से ५क एक ट्रैक्ट भी छपवाने का प्रबन्ध कर दें तो हमारी इस योजना को बड़ा बल मिल सकता है !

क्या मैं आशा करूं कि आर्य जनता मेरी प्रार्थना पर ध्यान देगी—

विनीत :—
काली चरण आर्य
अधिष्ठाता—"आर्यमित्र" प्रकाशन विभाग
५, मीराबाई मार्ग लखनऊ